वर्तमान समय में 'बाल-कला' का स्वरूप

प्रगति तिवारी*

किरन सरना**

बच्चों में कला के प्रति रुझान और प्रतिभा दोनों ही सामांय रूप से होती हैं। उनको प्रोत्साहित करने की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता। वर्तमान समय में 'बाल-कला' को प्रोत्साहित करने के लिए राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किये जा रहे हैं। पश्चिमी देशों की तुलना में भारत में बाल-कला को प्रोत्साहन देने का कार्य काफ़ी बाद में किया गया। इसके बाद भी भारत में बाल-कला को वह महत्व नहीं मिल पाया, जो मिलना चाहिए था या यह कहें कि 'बाल-कला' का स्वरूप वह नहीं है, जो होना चाहिए। प्रस्तुत शोध-पत्र में इंहीं प्रयासों की विस्तृत विवेचना की गयी है तथा कला शिक्षा के प्रचलित पाठ्यक्रम की चर्चा करते हुए बाल-कला के वर्तमान स्वरूप को समझने का प्रयास किया गया है।

'कला'[1] बालकों की **'आत्म-अभिव्यंजना'**[2] का एक विशिष्ट माध्यम है। इसका अपना मौलिक स्वभाव तथा नियम है। बालकों की कला, वस्तुपरक यथार्थ के सिद्धांतों से बंधी हुई नहीं होती वरन् आंतरिक भावना से प्रेरित होती है।[3]

बालक के *स्वैच्छिक कल्पना जगत* का विकास करने, उसके परीक्षण करने की शक्ति तथा सामान्य भावनाओं एवं अनुशासनात्मक कार्यवाहियों को नियंत्रित करने के लिये कला को आदर्श माध्यम माना गया है।[4]

बच्चों के चित्र और चित्र बनाने की प्रक्रिया उनके आत्मिक जीवन का ही एक अंश है। बच्चे अपने चारों ओर के संसार से किसी एक विषय-वस्तु को केवल कागज़ पर उतारते ही नहीं, बल्कि इस संसार में जीते हैं, वे इस संसार में प्रवेश करके सौंदर्य का सृजन करते हैं और इस सौंदर्यानुभूति का रसानुभूति में आनंद लेते हैं।

* *शोध छात्रा,* वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली, राजस्थान

** *प्रोफ़ेसर,* दृश्यकला विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली, राजस्थान

Chapter 9.indd 82 6/26/2015 2:50:11 PM

बच्चों का सृजनात्मक कार्य उनके आत्मिक जीवन का नितांत मौलिक क्षेत्र है। उनका सृजन उनकी आत्माभिव्यक्ति और आत्मपुष्टि का साधन है, जिसमें प्रत्येक बच्चे की अपनी व्यक्तिगत विशिष्टता प्रकट होती है। यह विशिष्टता किन्हीं भी ऐसे आम नियमों के अंतर्गत नहीं आ सकती, जो सभी के लिये एकमात्र और अनिवार्य हों।[5]

'बाल-कला' शब्द का पहली बार प्रयोग इटैलियन लेखक **कोरिडो रिकी (Corido Ricci)** ने 1887 में अपनी पुस्तक **'बच्चों के लिये'** कला में किया।[6]

बाल-कला को प्रोत्साहित करने में सबसे महत्वपूर्ण कार्य **'ऑस्ट्रिया'**[7] के शिक्षा-शास्त्री *'फ्रांज सिजेक' (Franz Cizek)*[8] *ने 'Juvenile Art Class'* [9] प्रारंभ करके 1897 में किया। उन्होंने कला-शिक्षा की एक क्रांतिकारी पद्धति का निर्माण किया। *शिक्षा जगत को सिजेक की देन अद्वितीय है।* **"चाइल्ड आर्ट" (बाल-कला)** शब्द सिजेक का ही दिया हुआ है। सिजेक ने कहा कि "बालक की कलाकृति की सबसे सुंदर चीज़ या सबसे अच्छी बात उसकी गलतियाँ हैं। . . . और जितना इन गलतियों को शिक्षक सुधारता जाएगा, उतना ही बेजान, मंद और व्यक्तित्वहीन वह कृति बन जाएगी।" लेकिन वे यह भी कहते हैं कि "बालक को मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। पूरा-पूरा स्वतन्त्र छोड़ देने से उसका विकास एक ही अवस्था तक होकर रुक जाता है। वह आगे नहीं बढ़ सकता।"[10]

सिजेक के ये विचार सार्वभौमिक हैं, वे किसी देश या काल विशेष के लिये नहीं अपितु विश्व भर के बालकों व शिक्षकों पर लागू होते हैं। सिजेक द्वारा प्रस्तुत यह मापदंड सार्वभौमिक होने के साथ ही अपने आप में पूर्ण था। इसके पश्चात् पश्चिमी देशों में **बाल-कला** को महत्व दिया जाने लगा तथा इस दिशा में अनेक प्रयास किये गये। 'यूरोप'[11] और 'अमेरिका'[12] में अक्सर सार्वजनिक स्थलों पर प्रदर्शनियाँ आयोजित की जाती हैं और सफ़ल बाल-कलाकारों को पुरस्कृत भी किया जाता है। 'आस्ट्रेलिया'[13] में सन् 1980 में 51 क्षेत्रों की टेलीफ़ोन निर्देशिका में 52 आस्ट्रेलियाई बालकों के चित्रांकन आवरणों पर छापे गये। इस प्रकार लगभग 45 लाख टेलीफ़ोन उपभोक्ता प्राथमिक स्कूलों के बच्चों की कला से सुपरिचित हो गये।' इसी प्रकार 'सिडनी'[14] के स्कूली बच्चों द्वारा रेलवे स्टेशन की दीवार को कलात्मक व कल्पनायुक्त 'भित्तिचित्रों'[15] से सुसज्जित कर 'कला-वीथिका'[16] जैसा रूप दिया गया है।'[17] बच्चों की कला की दिशा में स्वतन्त्र भावों की अभिव्यक्ति व सार्वजनिक रूप से किये प्रयासों में यह सराहनीय प्रयास है।

पश्चिमी देशों की तुलना में भारत[18] में **बाल-कला** को प्रोत्साहन देने का कार्य काफ़ी बाद में किया गया। इसके बाद भी भारत में बाल-कला को वह महत्व नहीं मिल पाया, जो मिलना चाहिए था या यह कहें कि 'बाल-कला' का स्वरूप वह नहीं है जो होना चाहिए। इसका प्रमुख कारण है- 'मैकाले'[19] द्वारा शुरू की गई अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली, जो आज भी भारतीय शिक्षा प्रणाली का अंग बनी हुई है। इस प्रणाली के अनुसार कला-शिक्षा में वस्तु पर पड़ी छाया और प्रकाश की छवि ठीक-ठीक बना लेना

ही पाठ्यक्रम का अंग है। यह पद्धिति महत्वहीन होने के साथ ही शिक्षकों व विद्यार्थियों दोनों के लिये अरूचिकर है।[20]

हमें यह समझना चाहिए कि बच्चों का सृजनात्मक कार्य उनके आत्मिक जीवन का नितांत मौलिक क्षेत्र है। उनका सृजन उनकी आत्माभिव्यक्ति और आत्मसंतुष्टि का साधन है। जिसमें प्रत्येक बच्चे की अपनी व्यक्तिगत विशिष्टिता प्रकट होती है। यह विशिष्टता किन्हीं भी ऐसे आम नियमों के अंतर्गत नहीं आ सकती, जो सभी के लिये एकमात्र और अनिवार्य हों।[21]

प्रचलित पाठ्यक्रम में बच्चे की ग्रहण शक्ति के क्रमिक विकास पर ही ध्यान दिया जाता है। प्राथमिक स्तर पर चार वर्ष के इस पाठ्यक्रम में 'साधारण वस्तु चित्रण'[22], 'प्रकृति चित्रण'[23], 'साधारण ठोस ज्यामितीय रेखांकन'[24] व 'ज्यामितीय आकारों' के पैटर्न आदि शामिल हैं। हालाँकि इस बात में कोई संदेह नहीं है कि इस प्रकार के चित्रण में भी बच्चों के स्वतन्त्र भाव चित्रण को भी कुछ स्थान मिलता है। बच्चा अपनी योग्यता अनुसार उन्मुक्त चित्रण करता है लेकिन यह भी अध्यापक की सहमति और संशोधन का विषय होता है। अत: विषय का मुख्य उद्देश्य कहीं खो जाता है।[25]

औपचारिक शिक्षा पाकर अभ्यास करता बच्चा क्रमश: कला-विद्या की लीक पर आ खड़ा होता है। अब उसकी रचनाएँ बातूनी तो हो जाती हैं, किन्तु बहुत बोलते हुए भी थोड़ा कह पाती हैं। सभ्यता के चक्करदार रास्तों और कला-विद्या के पेचों में उसकी व्याकुलता अभिव्यक्त नहीं हो पाती। अभिव्यक्ति होती है, तो पुराने घिसे-पिटे आकारों में निस्पंद या रूंधी हुई रहती है, इस तरह सीखते, बड़े होते कलाकार की संवेदनाएँ और जज़्बा शिथिल हो जाता है।[26]

बच्चों की शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन की दिशा में गुजरात के **'गिजुभाई बधेका'** (1885-1939)[27] का कार्य अविस्मरणीय है। वे शिक्षा में आमूल परिवर्तन के हिमायती थे। उन्होंने 1920 में 'बाल-मंदिर' की स्थापना करके नाना प्रकार के शैक्षिक प्रयोग किये।[28] अपनी जमी जमायी वकालत छोड़कर बाल-जीवन को अपना सर्वस्व समर्पित करने वाले गिजुभाई का 53 वर्षीय जीवन आज भी एक प्रेरणा स्त्रोत बना हुआ है।[29]

बच्चों की कला के क्षेत्र में **'श्री के. शंकर पिल्लै'** (1902-1989)[30] का कार्य महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने सन् 1949 में **सर्वप्रथम भारत में "बाल-कला"** प्रतियोगिता आयोजित की। सन् 1951 में अपने इस प्रयोग को सार्वभौम बनाने के उद्देश्य से इसे अंतर्राष्ट्रीय बाल-कला प्रदर्शनी का स्थान दिया। आज भी संसार के विभिन्न देशों के बालक इस प्रतियोगिता में भाग लेते हैं।[31] इस प्रकार की अन्य प्रदर्शनियाँ भी की गईं, जिन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनाई और जन-मानस को प्रभावित किया। तत्कालीन *राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन* ने 'अखिल भारतीय ललित कला और शिल्प परिषद' के नयी दिल्ली स्थित भवन में आयोजित एक बालचित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुये एक बार कहा था कि "इस प्रदर्शनी में रंगों की अपार विपुलता, कल्पना का प्राचुर्य और विशुद्ध ओजस्विता प्रकट हो रही है।"[32]

भारत सरकार द्वारा सर्वप्रथम उल्लेखनीय प्रयास **ललित कला अकादमी,** के तत्वावधान में 18 फ़रवरी से 25 फ़रवरी तक सन् 1956 में एक संगोष्ठी आयोजित करके किया गया। इस संगोष्ठी में कई मूर्धन्य विद्वानों - *एन.एस. बेन्द्रे, के.के. हेब्बार, पुलिन दत्त, मुल्क राज आनन्द, आर.एम. रावल, बी.सेन* आदि ने कला शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्य तथा महत्व पर अपने विचार प्रस्तुत किए। इस संगोष्ठी में प्रस्तुत विचारों के आधार पर बाल-कला संबंधी कुछ सुझाव निष्कर्ष रूप से सामने आए-

(i) 13 वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे के लिए कला-शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए और विद्यालयी पाठ्यक्रम में कला शिक्षा को उचित स्थान मिलना चाहिए।

(ii) अध्यापक द्वारा बच्चे के क्रमिक विकास पर ध्यान दिया जाना चाहिए और उसी अनुसार निर्देशन करना चाहिए।

(iii) शिक्षण पद्धति में स्वतंत्र अभिव्यक्ति पर ध्यान देना चाहिए।

(iv) बच्चे को अनुकरण करने की शिक्षा नहीं देनी चाहिए क्योंकि बच्चे के लिये चित्र वास्तविक है और वस्तु प्रतीक।

इसके अतिरिक्त इस संगोष्ठी में बच्चों के चित्रों की, समय-समय पर प्रदर्शनी करने की बात भी की गयी।[33]

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (N.C.E.R.T.) द्वारा सन् 1975 में *"The Curriculum for the Ten Year School– A Frame Work"* नामक दस्तावेज़ प्रकाशित किया गया। इसमें प्राथमिक शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों में 'सृजनात्मक क्रियाओं के द्वारा अभिव्यक्ति की योग्यता विकसित करना' भी शामिल है।[34]

वर्तमान 'राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली' (1986)[35] के तहत् कला शिक्षा को माध्यमिक शिक्षा में एक अनिवार्य विषय के रूप में अनुशंसित किया गया है। **राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (N.C.E.R.T.)** द्वारा हाल विकसित *'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005 (NCF - 2005)'*[36] की अनुशंसाओं में विद्यालयों में कला-शिक्षा के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला गया है, जिसके अनुसार इसे माध्यमिक स्तर तक अनिवार्य रूप से बच्चे सीखें और करें, ऐसा प्रावधान है।[37]

भारत सरकार द्वारा 2009 में 'नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम'[38] पारित किया गया, जो अप्रैल 2010 में क्रियान्वित हुआ है। इसके मानदंडों में अलग से कला-अध्यापक उपलब्ध कराने व 6 से 8 कक्षा तक के बालकों के लिए भी कला-शिक्षा का प्रावधान है।[39]

यदि हम उपर्युक्त विवेचन पर दृष्टि डालें, तो पाएँगे कि स्वतंत्रता के बाद से भारत में लगभग सभी दस्तावेज़ों में कला-शिक्षा को विद्यालय स्तर तथा शिक्षक-शिक्षा स्तर पर महत्व दिया गया लेकिन इसे कभी भी वह स्थान व स्वीकृति नहीं मिल सकी, जो निर्धारित की गयी थी।[40]

यह बहुत दु:ख की बात है कि यद्यपि कला का अनुभव मनुष्य की प्रारंभिक अवस्था में ही प्रारंभ हो जाता है परन्तु 'शिशुकाल'[41] और 'बाल्यावस्था'[42] की यह सृजनात्मकता धीरे-धीरे लुप्त होती जाती

है। आज के सामाजिक ढाँचे और शिक्षण पद्धति के कारण यह प्राकृतिक वृत्ति 'किशोरावस्था'[43] तक पहुँचते-पहुँचते लगभग समाप्त हो जाती है। उसे बनाए रखने के लिए और न केवल बनाए रखने के लिए बल्कि उसका उचित और स्वाभाविक विकास करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा के कुल ढाँचे को बदला जाए।[44] क्योंकि 'कला बालक के चरित्र-निर्माण में तथा व्यक्तित्व के निर्माण में सहयोग करती है।'[45]

विद्यालयी स्तर पर कला शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को विभिन्न कलाओं में पारंगत बनाकर उन्हें कलाकार बनाना न होकर उनमें विभिन्न कलाओं के प्रति जागरुकता की समझ, उसका रुझान, उसकी प्रशंसा और कला धरोहर को सुरक्षित रखकर उस पर गौरव का अनुभव करना होना चाहिए। यदि प्रत्येक विद्यार्थी को स्वयं की अभिव्यक्ति के लिये अवसर मिले, जिससे उनके अंदर की असीम ऊर्जा उन्हें सृजनात्मकता के लिये प्रेरित करे तो उनमें सकारात्मकता और विश्वास पैदा होगा और जीवन के विभिन्न पहलुओं के प्रति दृष्टिकोण भी बदलेगा।[46]

मनोविज्ञान की दृष्टि से यदि बालक की कला का अध्ययन किया जाए तो कभी-कभी बड़े-बड़े चौंकाने वाले तथ्य सम्मुख आते हैं। चित्रकला के माध्यम से बालक अपनी कुंठाओं के विचारार्थ बड़े अजीबोगरीब चित्र बनाता है। वह व्यक्ति चित्र में सिर बड़ा और धड़ छोटा बना सकता है। बड़े भाई से आतंकित या ईर्षालु बालक बड़ी मानवाकृति को कुरूप बनाने की चेष्टा करता है। उसमें वह अच्छे रंग नहीं भरेगा। कभी-कभी उसके हाथ में डंडा जैसी चीज़ थमा देगा, जो इस बात का द्योतक है कि वह मारने वाला व्यक्ति है स्पष्ट है कि कला चित्रण बालक की कुंठाओं के निवारण का एक महत्वपूर्ण माध्यम है।[47]

बाल-मन किसी भी बंधन से मुक्त, स्वच्छन्द और कल्पना युक्त होता है। वर्तमान समय में बालक के इसी मनोविज्ञान को समझने की सर्वाधिक आवश्यकता है। चाहे घर हो या विद्यालय, बच्चे को स्वतन्त्र परिवेश दिया जाए। ऐसा परिवेश जहाँ उसकी कल्पनाएँ उड़ान भर सकें और उसके सपने साकार हो सकें।

चाँदनी की नदी में नहाऊँ कभी,
बादलों की पतंगे उड़ाऊँ कभी।
तुम मुझे जो खुला एक आकाश दो,
तो परिन्दे सा उड़कर दिखाऊँ अभी।।[48]

(रमेश तैलंग)

कला-प्रवृत्तियों द्वारा बच्चे की ये भावनाएँ सफ़लतापूर्वक प्रकट हो जाती हैं। जब ये भावनाएँ निकल जाती हैं, तब आनंद का जो अनुभव होता है, वह बड़ा महत्वपूर्ण है। बच्चे के व्यक्तित्व के विकास के लिए यह आनंद का अनुभव, जिसे तृप्ति का बोध भी कह सकते हैं, बहुत ज़रूरी है।[49]

संदर्भ एवं टिप्पणी

[1]टर्नर जेने (ऐडिटर), द डिकश्नरी ऑफ़ आर्ट, मैकमिलन पब्लिशर, पेज नं.- 505

[2]साखलकर, र.वि., कला-कोश, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण-1998, पृ.सं. 138

[3]शुक्ल, रामचन्द्र, बालकों में कला प्रतिभा का क्रमिक विकास, कला, त्रैमासिक (बाल-कला अंक), ललित कला अकादमी, लखनऊ वर्ष-1981, पृ.सं. 39

[4]चैतन्य, कृष्ण, आधुनिक भारत की बाल-कला संस्कृति, 1985, वर्ष- 5, अंक-1, पृ.सं.34

[5]नागपाल, योगेन्द्र, बाल-हृदय की गहराईयाँ, पृ.सं.-70, पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि., नयी दिल्ली, संस्करण-1979

[6]वोला, विल्यम, चाइल्ड आर्ट, यूनिवर्सिटी ऑफ़ लंदन प्रेस लि. लंदन, 2 ऐडिशन-1944, पेज नं.- 8

[7]ऑक्सफ़ोर्ड इनसाइक्लोपिडिया ऑफ़ वर्ड हिस्ट्री, कम्पाईल्ड बाय मार्केट बुक लि., ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 1 पब्लिकेशन- 1988, पेज नं.-51

[8]चिल्वर्स, इयान एंड जॉन ग्लावेस स्मिथ, अ डिकश्नरी ऑफ़ मॉर्डन एंड कंटेमप्ररी आर्ट, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 2 ऐडिशन-1999, पेज नं.-138

[9]शर्मा, गणपतराम, हरिशचन्द्र व्यास, अधिगम शिक्षण और विकास के मनोवैज्ञानिक आधार, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, चतुर्थ सं.2007, पृ.सं. 24,

[10]रीड, हर्बर्ट, ऐजुकेशन फॉर पीस, रूटलेग एंड केगन पॉल, लंदन, 1950, पेज नं.-119

[11]राइट, एडमंड (एडिटर), ऑक्सफ़ोर्ड डिकश्नरी ऑफ़ वर्लड हिस्ट्री, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 2 ऐडिशन-2006, पेज नं.-210

[12]_____. पेज नं.-693

[13]ऑक्सफ़ोर्ड इनसाइक्लोपिडिया ऑफ़ वर्ड हिस्ट्री, इबिड, पेज नं.-49

[14]समर्स क्रिस (एडिटर), फ्रॉमेरस आस्ट्रेलिया 2007, विले पब्लिशिंग, इंक, पेज नं.- 99

[15]साखलकर, र.वि., पूर्वोद्धृत, पृ.सं. 67

[16]_____. पृ.सं. 67

[17]चक्रवर्ती, देवनारायण, बाल-कला साहित्य, कला त्रैमासिक, पूर्वोद्धृत, पृ.सं.35

[18]ऑक्सफ़ोर्ड इनसाइक्लोपिडिया ऑफ़ वर्ड हिस्ट्री, पेज नं.-322

[19] नागौरी, एस.एल., कांता नागोरी, विश्व इतिहास कोश, राज पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, प्रथम संस्करण-2011, पृ.सं. 182

[20]प्रसाद, देवी, शिक्षा का वाहन– कला, नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली, चतुर्थ संस्करण-2006, पृ.सं. (भूमिका से)

[21]सुखोम्लीन्स्की, वसीली, बालहृदय की गहराईयाँ (योगेन्द्र यादव, अनु.) प्रगति प्रकाशन, मास्को, द्वितीय संस्करण- 1986, पृ.सं.70

[22]साखलकर, र.वि., पूर्वोद्धृत, पृ.सं.110

[23]_____ पूर्वोद्धृत, पृ.सं.185

[24]_____ पूर्वोद्धृत, पृ.सं.71

[25]दत्ता, पुलिंन, आर्ट इन द ऐजुकेशन ऑफ़ चाल्इड, सेमिनार ऑन आर्ट ऐजुकेशन (रिपोर्ट), स्पॉसर्ड बाई ललित कला अकादमी, 1956, पेज नं.-41

[26]गोयल, जवाहर, बच्चों के चित्र, पिकासो और रवीन्द्रनाथ, अनौपचारिका (शिक्षा एवं कला अंक), दिसंबर-2008, वर्ष-33, अंक-12, पृ.सं.25

[27]सिंह, नागेंद्र (एडिटर), इंसाइक्लोपिडिया ऑफ़ द इंडिया बाइयोग्राफ़ी, ए.पी.एच. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, नयी दिल्ली, 2000, पेज नं.- 269

[28]शर्मा, सुभाष, भारत में शिक्षा व्यवस्था– अवधारणाएँ, समस्याएँ एवं संभावनाएँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2004, पृ.सं.94

[29]यादव, रामजी (संपादक), गिजुभाई संचयन, भारतीय पुस्तक परिषद, नयी दिल्ली, संस्करण-2012, भूमिका

[30]http://wikipedia.org

[31]http://www.childrenbooktrusta.com

[32]चक्रवर्ती, सुजीत कुमार, बच्चे कैसे सीखें, ऑक्सफ़ोर्ड एंड आई.बी.एच. पब्लिशिंग कं. नयी दिल्ली, संस्करण-1971, पृ.सं.19

[33]सेमिनार ऑन आर्ट ऐजुकेशन, (रिर्पोट), इबिड,पेज नं.-7

[34]गुप्ता, एस.सी., अलका गुप्ता, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, संस्करण-2012, पृ.सं. 301-304

[35]भारत सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा निति, 1986, नयी दिल्ली

[36]http://www.ncert.nic.in

[37]तिवारी, ज्योत्सना, विद्यालयों में कला-शिक्षा– कुछ आयाम, अनौपचारिका, पूर्वोद्धृत, पृ.सं.20

[38]भसीन, अनीश, मानवाधिकार एवं शिक्षा (लेख) महेन्द्र जैन (संपादक), प्रतियोगिता दर्पण, अप्रैल-2014, वर्ष-36, अंक-9, पृ.सं.84

[39]कंट्री रिर्पोट, आर्ट ऐजुकेशन इन इंडिया बाइ डिपार्टमेंट ऑफ़ ऐजुकेशन इन आर्ट एंड मैकग्रेगर (एडिटर) ऑक्सफ़ोर्ड हिंदी-इंग्लिश डिकश्नरी, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली-2012, पेज नं.- 951

[40]प्रसाद, देवी, पूर्वोद्धृत, पृ.सं. 24-27 (भूमिका से)

[41]मैकग्रेगर, आर.एस. (एडिटर), ऑक्सफ़ोर्ड हिंदी-इंग्लिश डिकश्नरी, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली-2012,पेज नं.- 951

[42]अरोरा, एस.(एडिटर), एडवांस इलसट्रेटेड ऑक्सफ़ोर्ड डिकश्नरी,वर्मा बुक एजेंसी, नयी दिल्ली, पेज नं.- 199

[43]शेरजंग,निर्मला, मनोविज्ञान का परिभाषिक शब्दकोश, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण- 2012, पृ.सं.15

[44]प्रसाद, देवी, पूर्वोद्धृत, पृ.सं.23

[45]आर्य, जयदेव, कला का अध्यापन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पब्लिशर्स, आगरा, संस्करण-1968, पृ.सं.8

[46]प्रसाद, देवी, पूर्वोद्धृत, पृ.सं.129

[47]तिवारी, ज्योत्सना, विद्यालयों में कला शिक्षा– कुछ आयाम, अनौपचारिका, पूर्वाद्धृत, पृ.सं. 22

[48]http://www.kavitakosh.org

[49]प्रसाद, देवी, पूर्वोद्धृत, पृ.सं.130